ISSN 2320-2858 UGC Journal No. 42684 अप्रैल 2023
वर्ष - 11 अंक - 125

श्री श्री नरहरि सेवा संस्थान
प्रत्यक्ष दर्शी लोकस्य सर्वदर्शी भवेन्नरः

ब्रज लोक संपदा

सौजन्य : गीता शोध संस्थान एवं रासलीला अकादमी, वृन्दावन

कुसुम सरोवर (गोवर्धन)

~O bmH g|nXm

साहित्य, कला, संस्कृति, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका

संपादक :

डॉ. उमेश चन्द्र शर्मा

★

सह-संपादक :

चन्द्र प्रताप सिंह सिकरवार

★

सहयोग :

डॉ. रश्मि वर्मा

★

कला संयोजन :

ब्रज ग्राफिक्स

कार्यालय :

ब्रज लोक संपदा कार्यालय, 302, गुरुकुल रोड, वृन्दावन

मो. : 09410619265, 7017709490

Website : www.brajloksampada.com ⋆ E-mail : brajloksampada@gmail.com

स्वामी मुद्रक एवं प्रकाशक

डॉ. उमेश चन्द्र शर्मा द्वारा चौधरी प्रिंटिंग प्रेस, ब्रह्मकुण्ड, वृन्दावन, मथुरा से मुद्रित कराकर 302, गुरुकुल मार्ग, वृन्दावन (मथुरा) से प्रकाशित।

ब्रज लोक संपदा भारतीय संस्कृति के मासिक शोध-पत्र की पृष्ठभूमि में हमारा यह सद् प्रयास है कि भारत की क्षेत्रीय कला व साहित्य का प्रज्ञात कलेवर परिवेषण कर राष्ट्रीय भावात्मक एकता के सूत्र को परस्पर संस्कृति के आदान-प्रदान से पुष्ट करें; इसी से व्यक्ति का व्यक्तिवाद शिथिल होकर समन्वित भाव से लोक अस्मिता के रूप में विकासोन्मुख नव जीवन का स्वरूप ग्रहण करेगा।

आवेदन - पत्र

कृपया मैं व्रजलोक संपदा पत्रिका का एक वर्ष का सदस्य बनना चाहता/चाहती हूँ। सदस्यता शुल्क.....नकद/चैक/ड्राफ्ट नं.....
दिनांक .....संलग्न है।

श्री/श्रीमती/.....

पिता/पति का नाम.....

जहाँ पत्रिका मंगाना चाहते हो वहाँ का पूरा पता .....

.....

पिन..... दूरभाष/मो०.....

हस्ताक्षर

(कृपया उक्त आवेदन पत्र को हाथ से लिखकर या टाईप कराकर भेज सकते हैं)

सदस्यता शुल्क

एक प्रति- 100/-, एकवर्षीय - 1100/-

विशेष: अपना चैक/ड्राफ्ट: श्रीश्री नरहरि सेवा संस्थान के नाम से
302, गुरूकुल रोड, वृन्दावन, मथुरा, उ.प्र., पिन: 281121 पर भेजें।

बैंक का नाम - केनरा बैंक

शाखा - विद्यापीठ चौराहा, वृन्दावन

खाता संख्या - 2480101002061

आईएफसी कोड - CNRBN0002480

प्रकाशित आलेखों के विचारों से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
शोध पत्रिका से सम्बन्धित सभी विवाद केवल मथुरा न्यायालय के अधीन होंगे।

साथ-साथ रहना, शुद्ध आहार लेना, साथ मिलकर सर्वोपकारी कार्यों में लगे रहना, किन्तु वर्तमान में यह सब कुछ देखने में अतिदुर्लभ हो रहा है, किसी का भी मन किसी से नहीं मिलता। सब अपने को श्रेष्ठ और दूसरे को नेष्ठ समझे बैठे हैं।

आत्मज्ञान, आत्मदर्शन, प्रतिदिन के व्यवहार में कितनी उपयोगिता है; इसकी चर्चा गीता से अधिक प्रामाणिक कहाँ होगी? इस गृह्यतम ज्ञान के लिये गीता में भी कुछ इस प्रकार कहा है-

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्या कार्य व्यवस्थितौ

क्या करने योग्य कार्य है? क्या नहीं करने योग्य अकार्य है इसका निर्णय तो अध्यात्म शास्त्र ही करता है। यही उपनिषत् भी स्पष्ट करते हैं।

दुराचारी जीव को मृत्यु के समय समस्त वेदवेदांग का जो उसने अध्ययन किया है, वह विस्मृति में चला जाता है, श्रीमद्भगवद् गीता के शब्दों में सम्यग्व्यवसित न हो गया तो तो उस मनुष्य को सद्गति नहीं मिल सकती। शरीर त्यागने के समय, जिस भाव का जीव स्मरण करता है, वही भाव उसे नये जन्म में पुनः मिलता है, जैसे रात्रि में शयन से पूर्व जो विचार आपके मानस में रहता है वही विचार प्रातःकाल निद्रा से उठने पर पुनः आपके मानस को आ घेरता है। अभिप्राय यह है कि मानव जिस भाव का जीवन पर्यन्त अभ्यास करता रहता है, उसी का स्मरण अन्त समय पर होता है। महा निशा से जब पुनर्जागरण होता है तो पुनः वही विचार मानस को आच्छादित कर देता है।

डॉ. उमेश चन्द्र शर्मा

श्रीमद्भगवद् गीता में श्रीकृष्ण का यह उद्घोष द्रष्टव्य है-

अन्तकाले च मामेव स्मरन्युक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥8/5

अर्थात् जो पुरुष अन्तकाल में मेरा ही स्मरण करते हुए शरीर का त्याग करते हैं वे मेरे ही स्वरूप को प्राप्त होते हैं। इसमें किंचित भी संदेह नहीं है।

अन्तर्वस्तु

1. श्रीमद्भगवद् गीता 05

2. क्या भगवद्–गीता उपनिषदों का सार है? 06
– ब्रह्मबोधि

3. उ.प्र. ब्रज तीर्थ विकास परिषद ने सजाया कुसुम सरोवर 18
– चन्द्र प्रताप सिकरवार

4. भारत की लोक कलाएं 20
– डॉ. भारती परमार

5. धरणीधर 29
– सत्य प्रकाश शर्मा

श्रीमद्भगवद्गीता

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कार स शान्तिमधिगच्छति॥

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममतारहित,
अहङ्काररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है,
वही शान्ति को प्राप्त होता है॥2.71॥

क्या भगवद्-गीता उपनिषदों का सार है?

ब्रह्मबोधि

यह एक आम धारणा है कि उपनिषद आध्यात्मिक ज्ञान की पुस्तकों में सर्वोपरि हैं और भगवद्–गीता उपनिषदों का ही सार है! इस धारणा को प्रसारित करने में एक श्लोक का भी बड़ा महत्वपूर्ण योगदान रहा है जो काफी प्रचलित है। वह श्लोक इस प्रकार है–

"सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनंदनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥"

इस श्लोक की पहली पंक्ति का अर्थ है कि गोपालनंदन श्रीकृष्ण ने उपनिषद् रूपी गायों को दुह कर उनका दूध भगवद् गीता के रूप में प्रस्तुत किया। अर्थात, भगवद्–गीता उपनिषदों का ही सार है।

उपनिषदों की महानता में संदेह नहीं! महान दार्शनिक आर्थर शॅपेन–हाउअर ने उपनिषदों के सन्दर्भ में कहा था– "It has been the solace of my life] it will be the solace of my death." अर्थात, "ये (उपनिषद) मेरे जीवन का ढाढ़स रहे हैं, और वे ही मेरी मृत्यु की सांत्वना होंगे।"

उपनिषदों की संख्या क्या है, काल क्या है आदि पर विवाद रहता है। कुछ लोग उपनिषदों की संख्या 108 मानते हैं, कुछ लोग उससे भी अधिक, लेकिन उनमें से सर्वश्रेष्ठ और सबसे प्रमाणिक उपनिषद सामान्यतः 11 ही माने जाते हैं, और अक्सर इन्हीं एकादश उपनिषदों का संग्रह सहजता से मिलता है। किंतु अगर हम इन एकादश उपनिषदों के साथ भगवद्–गीता का अध्ययन करते हैं, और उन्हें मिला कर देखते हैं, तो यह धारणा असत्य प्रतीत होती है कि भगवद्–गीता उपनिषदों का ही सार है। निश्चय ही जो कुछ इन एकादश उपनिषदों में श्रेष्ठ है, वह भगवद्–गीता में है, किन्तु जो कुछ अन्य भगवद् गीता में है, वह उपनिषदों में प्राप्त नहीं होता। जो उपनिषदों में है, वह वेदों में नहीं है, और जो भगवद्–गीता में है, वह उपनिषदों में नहीं। कैसे ? यह आगे स्पष्ट किया जाता है।

लेकिन, उसके पहले यह बताना उचित होगा कि बृहदारण्यक और छान्दोग्य–जैसे सबसे महत्त्वपूर्ण उपनिषदों की रचना पश्चिमी सभ्यता की वैचारिकता और दार्शनिकता के मूल प्राचीन स्तम्भ सुकरात, प्लेटो और अरस्तू से पहले हो चुकी थी, और जो उच्च कोटि की अध्यात्मिक चर्चाएं और जीवन के सबसे अमूर्त विषयों पर विचार उपनिषदों में उपलब्ध हैं, वे भारतेत्तर विश्व के प्राचीन काल के किसी अन्य ग्रंथ में उपलब्ध नहीं। आश्चर्य नहीं कि शॉपेनहाउअर ने यह कहा कि उपनिषद उनके जीवन का आधार हैं।

तो आइए, अब यह देखते हैं कि भगवद् गीता में क्या है? जो उपनिषदों में नहीं है, और क्यों यह कहना गलत है कि जो उपनिषदों में है, उसी का सार भगवद्–गीता में प्रस्तुत किया गया है।

लोग कहते हैं कि उपनिषदों में ब्रह्म-विद्या है। लेकिन ब्रह्म-विद्या का क्या अर्थ है? ब्रह्म-विषयक सामान्य चर्चा या ब्रह्म-प्राप्ति की विद्या? ब्रह्म-विद्या का अर्थ होता है ब्रह्म या ईश्वर के स्वरूप की सामान्य चर्चाओं के साथ-साथ ब्रह्म-प्राप्ति के उपायों या 'योगों' की चर्चा। 'योग' का अर्थ होता है 'जोड़' या 'जोड़ना', और अध्यात्म में 'योग' का मतलब है वह साधना या वह प्रणाली अथवा तरीके, जो ईश्वर की ओर ले जाएँ और ईश्वर से अंततः जुड़ाव कर दें, ईश्वर-प्राप्ति करा दें, ब्रह्म-प्राप्ति करा दें। अगर ब्रह्म-विद्या का यह अर्थ मानें, तो उपनिषदों में यह ब्रह्म-विद्या बहुत ही थोड़ी-सी है या नगण्य है। वहाँ ब्रह्म और आत्मा के स्वरूप पर या कुछ अन्य विषयों जैसे ब्रह्मांड की उत्पत्ति कैसे हुई, कैसे सृष्टि का उद्विकास हुआ? आदि पर अधिक चर्चा है। ब्रह्मविद्या के नाम पर विशेष रूप से ओंकार की साधना की चर्चा थोड़ी-सी आई है, और संक्षेप में यह बताया गया है कि ओंकार एक धनुष की भाँति है जिस पर आत्मा के बाण को साध कर उसे ब्रह्म तक भेजा जा सकता है, ब्रह्म का लक्ष्य वेध किया जा सकता है, ब्रह्म से आत्मा का मिलन कराया जा सकता है। लेकिन इस रूपक का सटीक अर्थ क्या हुआ, यह स्पष्ट नहीं किया गया है। इसलिए, ब्रह्म-चर्चा और ब्रह्म-विद्या में फर्क करना जरूरी है।

भगवद्-गीता में सिर्फ आत्मा और ब्रह्म के स्वरूप पर चर्चा नहीं है, यानि सिर्फ ब्रह्म-चर्चा

नहीं है। वहाँ ब्रह्म-विद्या भी है- ब्रह्म को कैसे प्राप्त करें, यह विद्या । आइए, इसे थोड़ा और स्पष्टता से समझते हैं।

भगवद् गीता में ईश्वर प्राप्ति के 10 प्रमुख साधनों या 'योगों' का निरूपण किया गया है, जिन्हें 10 महायोग कह सकते हैं। इनमें से चार महायोग, जो अधिक लोकप्रिय या प्रचलित हैं, का नाम है ज्ञान-योग, कर्मयोग, भक्तियोग और राजयोग, जिसे ध्यान-योग भी कहा करते हैं। देखते हैं कि इन चार योगों के विषय में जो कुछ श्रीकृष्ण भगवद्-गीता में कहते हैं उनमें से कितना कुछ एकादश उपनिषदों में उपलब्ध है।

भगवद्-गीता में सबसे अधिक श्लोक कर्मयोग पर हैं, क्योंकि भगवद्-गीता प्रमुख रूप से युद्ध के मैदान में एक कर्मवीर को दी गई कर्म की शिक्षा है। भगवद् गीता में विस्तार से बताया गया है कि कैसे सारे सांसारिक कर्मों को करते हुए भी उन्हीं के माध्यम से ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। इसमें अनासक्त हो कर कर्म करना, ईश्वर को समर्पित करके कर्म करना, अहंकार रहित होकर कर्म करना और निष्काम भाव से कर्म करना ये चार प्रमुख सिद्धांत हैं। इन सभी तरीकों के विषय में विस्तार से भगवान ने भगवद् गीता में बार-बार बताया है। उपनिषदों में एक-आध जगहों पर ही कर्म-विज्ञान के सम्बन्ध में बहुत ही थोड़ी-सी चर्चा है, यह चर्चा कर्मयोग के विभिन्न पहलुओं को स्पर्श भी नहीं करती। जैसे, ईशावास्योपनिषद में ये दो श्लोक हैं जो त्यागपूर्वक कर्म करने की बात करते हैं, लेकिन इस प्रकार से कर्म करने से ईश्वर-प्राप्ति होती है, इसका कोई संकेत नहीं है-

ॐ ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥1॥

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥2 ॥

(इस जगती में जो जगत है वह ईश द्वारा बसा हुआ है, इसलिए त्यागपूर्वक भोग करो, किसी दूसरे के धन की आकांक्षा मत करो ॥1 ॥ मनुष्य कर्म करे परंतु कर्म करते हुए ही इस संसार में सौ वर्ष जीने की इच्छा करें, इस प्रकार मनुष्य में कर्म का लोप नहीं होता, इसके बिना कोई रास्ता नहीं ॥2 ॥)

दूसरे श्लोक में जो कर्मों के लोप या उनमें लिप्त नहीं होने का नुस्खा बताया गया है, वह है 'कर्म करते हुए सौ वर्ष जीने की इच्छा करना' जो बहुत अर्थपूर्ण नहीं लगता। फिर, जब तक कर्म ब्रह्म-प्राप्ति या ईश्वर-प्राप्ति के साधन नहीं बनते, तब तक उन्हें कर्म-योग का अंग नहीं माना जा सकता। इस दृष्टि से उपनिषदों में कर्मयोग की चर्चा नहीं है, और कर्म करने की विधि की चर्चा भी स्वल्प और नाम मात्र की है।

अगर हम ज्ञान-योग की बात करें, तो भगवान ने भगवद् गीता में अत्यंत विस्तृत रूप से ज्ञान-योग पर सांगोपांग चर्चा की है। यह चर्चा सिर्फ आत्मा और ईश्वर के स्वरूप तक सीमित नहीं है, बल्कि ज्ञान के माध्यम से मोक्ष या ईश्वर को कैसे प्राप्त करते हैं? इस पर भी है। भगवान ने 13 वें और 14 वें अध्यायों में विस्तार से बताया है कि प्रकृति के तीन गुण कौन-से होते हैं और उन गुणों के क्या लक्षण होते हैं? और उनके क्या परिणाम होते हैं? उन्होंने यह भी बताया है कि कैसे इन तीनों गुणों के बंधन को तोड़ा जाता है, कैसे इनके घेरे से निकलकर गुणातीत अवस्था प्राप्त की जाती है, और तभी मोक्ष मिलता है, ईश्वर-प्राप्ति होती है, ब्रह्म-प्राप्ति होती है। उपनिषदों में एक-आध जगह प्रकृति के त्रिगुणात्मक होने का संकेत है, लेकिन न तो उन तीन गुणों- सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण का नाम बताया गया है, न यह बताया गया है कि उनके क्या लक्षण और परिणाम हैं। यह भी नहीं बताया कि कैसे त्रिगुणातीत अवस्था प्राप्त की जाती है। वास्तव में न तो 'त्रिगुणातीत' या 'गुणातीत' शब्दों का प्रयोग एकादश उपनिषदों में मिलता है, न ऐसा कोई विचार ही मिलता है। मोक्ष के लिए ब्रह्म तथा आत्मा के अलावा प्रकृति और उसके गुणों के स्वरूप को समझना भी उतना ही जरूरी है जितना ब्रह्म और आत्मा के स्वरूप को। लेकिन प्रकृति के स्वरूप की सम्यक चर्चा एकादश उपनिषदों में नहीं मिलती। यह जरूर कहा जा सकता है कि भगवद्-गीता में जो ब्रह्म और आत्मा के स्वरूप की चर्चा है उसका एक कम स्पष्ट रूप उपनिषदों में भी उपलब्ध है।

जहाँ तक ध्यान-योग का प्रश्न है, जिसे राजयोग भी कहते हैं, तो उसका भी वर्णन उपनिषदों में न के बराबर है। एक जगह 'ध्यान-योग' शब्द का प्रयोग जरूर हुआ है, लेकिन वह क्या होता है, यह नहीं बताया गया-

ते ध्यान-योगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।
यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः॥

(श्वेताश्वतर उपनिषद्, प्रथम अध्याय, श्लोक 3)

श्वेताश्वतर उपनिषद में श्वेताश्वतर ऋषि द्वारा ध्यान में जाकर सत्य देखने की बात की गयी है लेकिन वह ध्यान कैसे साधा जाए कि सत्य के दर्शन हों, ईश्वर के दर्शन हों, आत्मा का साक्षात्कार हो, इस पर कोई

मार्गदर्शन इन उपनिषदों में नहीं मिलता, जो कि काफी स्पष्ट तौर पर भगवद् गीता में उपलब्ध है। भगवद् गीता का छठा अध्याय विशेष रूप से इस सन्दर्भ में देखा जा सकता है। ध्यान में बैठने की विधि क्या है? आँखों को कहाँ केंद्रित करते हैं? कैसे शरीर की मुद्रा बनाते हैं? और ध्यान को स्थिर करने के लिए कैसे सभी ओर से मन को समेटते हैं कि ध्यान भटके नहीं, आदि विषयों पर भगवद् गीता में स्पष्ट मार्गदर्शन है। ऐसी कोई चर्चा इन उपनिषदों में नहीं मिलती।

जहाँ तक भक्तियोग का प्रश्न है, 'भक्त' शब्द सिर्फ एक ही बार एकादश उपनिषदों में आया है और वह भी किसी ऋषि के मुख से नहीं आया। श्वेताश्वतर उपनिषद में श्वेताश्वतर ऋषि का प्रवचन शेष होने के बाद एक अन्य व्यक्ति अंत में, छठे अध्याय के 23वें श्लोक में, बताता है कि श्वेताश्वतर उपनिषद के अर्थ की प्राप्ति उसी व्यक्ति को होती है जिसे देवता और गुरु में परम भक्ति होती है। लेकिन अगर 'भक्ति' शब्द का प्रयोग करने के साथ-साथ भक्ति के स्वरूप पर थोड़ा प्रकाश डाला गया होता और भक्ति की साधना कैसे की जाती है, इस विषय में चर्चा की गई होती, तो साधकों को थोड़ी मदद भक्ति के माध्यम से ईश्वर-प्राप्ति या ब्रह्म-प्राप्ति में मिल पाती। यह ब्रह्म-विद्या होती, किंतु ऐसी कोई विद्या इन उपनिषदों से नहीं मिलती। तो जब भक्ति का दूध उपनिषदों में है ही नहीं, तो भला यह दूध गोपालनंदन कृष्ण ने उपनिषद-रूपी गायों से दुहा कैसे?

यह तो हुई चार प्रचलित महायोगों की बात, यानि भक्तियोग, ज्ञानयोग, ध्यानयोग और कर्मयोग की, जिनकी चर्चा ज्यादा हुआ करती है। लेकिन हमें जानना चाहिए कि भगवान ने इन चारों के अलावा 5 अन्य स्वतंत्र योगों का निरूपण भी भगवद्-गीता में किया है, और इन कुल 9 योगों के मिश्रण से एक दसवें समन्वययोग या पर्युपासना योग का भी प्रतिपादन भगवान ने भगवद्-गीता में किया है। आइए, हम यह जानते हैं कि ईश्वर-प्राप्ति के लिए ये बाकी योग कौन-से हैं, और क्या इन ब्रह्म-विद्याओं के विषय में कोई ज्ञान उपनिषदों में उपलब्ध है।

भगवान ने जपयोग की चर्चा 'जपयज्ञ' के नाम से भगवद् गीता में की है (10:25), जिससे ईश्वर-प्राप्ति हो सकती है। एकादश उपनिषदों में कहीं भी 'जप' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है, न कोई स्पष्ट संकेत कहीं मिलता है कि जप के माध्यम से ईश्वरप्राप्ति की ओर हम बढ़ सकते हैं। जैसाकि पहले कहा गया, ओंकार की साधना पर जरूर इन उपनिषदों में संक्षिप्त चर्चा हुई है, किंतु वहाँ भी यह नहीं बताया गया कि ओंकार का जप करना है, या ओंकार का ध्यान करना है अथवा ओंकार का मनन करना है। इसलिए न तो 'जप' शब्द का प्रयोग उपनिषदों में मिलता है, न जप के विषय में कोई स्पष्ट विचार इन उपनिषदों में उपलब्ध है।

एकादश उपनिषदों में सभी अन्य ग्रंथों की तरह यदा-कदा परोपकार की चर्चा है, जैसे तैत्तिरीय उपनिषद् की भृगुवल्ली के दशम अनुवाक के श्लोक 2, 3 में, यद्यपि कहीं ऐसा नहीं कहा गया कि परोपकार से ईश्वर प्राप्ति भी हो सकती है। उपनिषदों में परोपकार एक सामान्य नैतिक निर्देश के रूप में पाया जाता है। दूसरी ओर, भगवद् गीता में परोपकार को दान के रूप में सभी के लिए अनिवार्य कर दिया गया है-

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥18:5॥

फिर संन्यासियों तक से भगवान ने यह कहा है कि उन्हें भी परोपकारी बन कर ईश्वर को प्राप्त करना चाहिए। भगवान ने भगवद्–गीता में दो बार कहा है– 'ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्व भूत हिते रता:' यानि वे परोपकार करने वाले (परोपकार के माध्यम से) मुझे ही प्राप्त करते हैं–

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धय:।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रता: ॥12.4॥
लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषय: क्षीणकल्मषा:।
छिन्नद्वैधा यतात्मान: सर्वभूतहिते रता: ॥5.25॥

यानि परोपकार को एक महायोग के रूप में ईश्वर–प्राप्ति के साधन के रूप में भगवद् गीता में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है। परोपकार पर जितना भी जोर दिया जाए, जब तक उसे ईश्वर प्राप्ति के साधन के रूप में प्रतिपादित नहीं किया जाता तब तक परोपकार 'योग' का दर्जा प्राप्त नहीं कर सकता। उपनिषदों में यही हुआ है– परोपकार योग का दरजा प्राप्त नहीं कर सका, ब्रह्म–प्राप्ति के साधन के रूप में निरूपित नहीं पाया, ब्रह्मविद्या का अंग नहीं बन पाया।

एक अन्य योग की चर्चा भगवद् गीता में है, जो ईश्वर–प्राप्ति करा देता है, मोक्ष–लाभ करा देता है, लेकिन जिसका कोई जिक्र उपनिषदों में नहीं मिलता। वह है 'ईश्वरध्यानस्थ देहत्याग–योग'। भगवद्–गीता में यह बताया गया है कि यदि मृत्यु के क्षण में ईश्वर का स्मरण होता रहे तो मृत्यु के बाद ईश्वर–प्राप्ति हो जाती है–

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
य: प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशय: ॥8.5॥

किंतु साथ ही यह भी बताया गया है कि अंतिम क्षणों में ईश्वर का स्मरण तभी होता है जब जीवन भर उन्हें स्मरण करने का अभ्यास रहा हो–

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥8.7॥
अनन्यचेता: सततं यो मां स्मरति नित्यश:।
तस्याहं सुलभ: पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिन: ॥8.14॥

भगवद् गीता यह रहस्य भी खोलती है कि कुछ योगी अपनी साधना के द्वारा ध्यान में बैठकर भावों के बीच दृष्टि केन्द्रित कर ईश्वर को याद करते हुए देह त्यागने की क्रिया भी सीख लेते हैं, और इस प्रकार शरीर का सायास त्याग कर मोक्ष प्राप्त करते हैं–

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मन: प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥8.12॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
य: प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥8.13॥

इस प्रकार की कोई ब्रह्म-विद्या इन एकादश उपनिषदों में नहीं पाई जाती।

भगवद् गीता में एक अन्य महान योग शरणागतियोग की चर्चा है जिसके द्वारा ईश्वर-प्राप्ति होती है। ईश्वर में सम्पूर्ण समर्पण और एकमात्र परमेश्वर की, न कि अनेक देवताओं की, शरण में रहने को 'शरणागति योग' कहते हैं। भगवद् गीता में शरणागति योग के कुछ श्लोक देखें-

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥18.66॥

(सारे धर्मों को, अर्थात समस्त कर्तव्य कर्मों को त्यागकर केवल एक मुझ परमेश्वर की ही शरण में आ जाओ! मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त कर दूँगा- शोक न करो!)

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।

तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥18.62॥

(इसलिए, हे अर्जुन! तुम सब प्रकार से अपने हृदय में स्थित परमेश्वर की ही शरण में जाओ; उनकी कृपा से तुम्हें परम शांति एवं शाश्वत स्थान-परमधाम, मुक्तिधाम की प्राप्ति होगी।)

इस शरणागति योग का कोई संकेत इन उपनिषदों में नहीं मिलता। वेदों में भले ही इसके विपरीत एक परमात्मा की शरण में रहने की जगह विभिन्न देवताओं इंद्र, वरुण, अग्नि आदि की शरण में एक साथ रहने के दृष्टान्त मिलते हैं, जो भगवद् गीता की ब्रह्मविद्या के नितांत विपरीत हैं।

भगवद् गीता के अनुसार मोक्षविद्या का प्रचार-प्रसार, जिसे 'गीता ज्ञान प्रसार-योग' अथवा 'मोक्षविद्याप्रसार-योग' भी कहते हैं, के द्वारा भी ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है-

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।

भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥18.68॥

(जो मनुष्य मुझमें परम प्रेम करके इस अति रहस्य-युक्त (भगवद्-गीता के) ज्ञान को मेरे भक्तों में कहेगा, उसकी मुझमें परम भक्ति होगी और वह मुझमें ही आ मिलेगा, इसमें कोई संदेह नहीं!)

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।

भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥18.69॥

(न तो उससे बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करने वाला मनुष्यों में कोई है, और न उससे बढ़कर मेरा प्रिय इस पृथ्वी पर दूसरा कोई होगा।)

ऐसा कोई संकेत कथित उपनिषदों में नहीं मिलता।

भगवद्-गीता में ब्रह्म-विद्या का एक मूल सिद्धांत है समदृष्टि सभी भूतों, जातियों, वर्णों, जीवों, सुख-दुःख, सिद्धि-असिद्धि, मान-अपमान, सरदी गरमी में समदृष्टि- जो सभी प्रकार के आध्यात्मिक साधकों पर लागू होता है। यहाँ तक कि न केवल ज्ञान बल्कि परम भक्ति की प्राप्ति में भी ऐसी समदृष्टि की जरूरत होती है-

समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥18.54॥

ऐसी समदृष्टि की कोई चर्चा उपनिषदों में नहीं मिलती। उलटे जातियों के बीच विषम दृष्टि का एक वाक्य एक उपनिषद् में जरूर मिलता है, जहाँ कहा गया है कि चंडाल को जूठा भोजन भी दिया जा सकता है-

तस्मादु हैवंविद्यद्यपि चण्डालायोच्छिष्टं
प्रयच्छेदात्मनि हैवास्य तद्वैश्वानरे हुता स्यादिति
तदेष श्लोकः॥ छान्दोग्य उपनिषद् 5.24.4

(इसलिए, इस रहस्य को जानने वाला स्वयं जो भोजन करता है उसे तो यज्ञ समझता ही है, अगर चांडाल को भी भोजन देता है, भले ही बचा हुआ या जूठा भोजन दे, उसे भी वैश्वानर आत्मा में किया गया होम ही समझता है, इस पर एक श्लोक भी है)

एकादश उपनिषदों में एक उपनिषद् तो ऐसा भी है जो पत्नी को शारीरिक दंड देने की अनुशंसा भी करता है-

सा चेदस्मै न दद्यात् काममेनामवक्रिणीयात् सा चेदस्मै नैव दद्यात् काममेनां यष्ट्या वा पाणिना वोपहत्यातिक्रामेदिन्द्रियेण ते यशसा यश आदद इत्ययशा एव भवति॥ बृहदारण्यक उपनिषद, 6.4.7॥

"विवाह के अनंतर पत्नी पति को सहयोग न दे तो उसे सुंदर सुंदर वस्तुएं लाकर दे जिससे वह संतुष्ट होकर सहयोग दें। फिर भी सहयोग न दे तो छड़ी से या हाथ से उसकी खूब तारणा करें... इस प्रकार पत्नी अयशस्विनी हो जाती है अपनी अलग न चला कर पति के साथ सहयोग देने लगती है।"

यह बात भी स्त्री-पुरुष के बीच की समदृष्टि या 'समः सर्वेषु भूतेषु' के सिद्धांत के विरुद्ध जाती हैं, इस प्रकार की या अन्य कोई भी निम्न स्तर की बात भगवद् गीता में नहीं पाई जाती।

ईश्वर को कौन-कौन प्रिय है, इसका कई स्थलों पर जिक्र भगवद्-गीता में आया है। कहना न होगा कि जो ईश्वर को विशेष प्रिय होगा वही तो मोक्ष का पात्र भी होगा! भगवद गीता के 18वें अध्याय में कहा है कि जो मोक्षविद्या का प्रचार करता है, और जो उसका स्वयं आचरण भी करता है, उससे प्रिय ईश्वर को कोई नहीं होता। 12 वें अध्याय में यह कहा है कि कुछ (43) ऐसे गुण और भाव हैं जो ईश्वर को बहुत प्रिय हैं, और जिनमें ये गुण और भाव पाए जाते हैं, वे ईश्वर को प्रिय है (12.13-20)। ये सभी गुण और भाव या तो सकारात्मक भावनाएं हैं या नैतिक मूल्य। सकारात्मक भावनाओं और नैतिक मूल्यों का ऐसा संग्रह भगवद् गीता के 12वें अध्याय में और फिर 16वें अध्याय में 'दैवी गुणों' के रूप में विशेष तौर पर मिलता है। ये दोनों अध्याय मिलकर मानवीय नैतिकता को सहजता से परिभाषित करते हैं। नैतिक मूल्यों को और मानवीय तथा दिव्य भावनाओं को प्रकाशित करने का ऐसा कोई प्रयास उपनिषदों में लक्षित नहीं होता। ऐसा कोई धर्मग्रंथ नहीं है जिसमें इक्का-दुक्का नैतिकता और जीवन-मूल्यों की बातें नहीं की गई हो, लेकिन उन पर जो जोर और जो विस्तार भगवद्-गीता में दिखता है, वैसा एकादश उपनिषदों में नहीं दिखता।

वेदों से आगे बढ़ते हुए यद्यपि उपनिषदों में ब्रह्म-चर्चा बड़े विस्तार से की गई है, लेकिन एकादश उपनिषदों में मोक्ष, कैवल्य, निर्वाण आदि शब्द कहीं नहीं आए हैं। 'विमोक्षाय' शब्द एक-आध बार आया है, लेकिन वह सामान्य अर्थों में है। वास्तव में मोक्ष की या मुक्ति की अवधारणा उपनिषदों में कहीं-कहीं सूक्ष्म रूप से जरूर है, मगर वह पूरी तरह विकसित नहीं हो पाई है, यद्यपि उसकी ओर बढ़ते हुए कदम दीख पड़ते हैं। भगवद् गीता में मोक्ष को यथेष्ट विस्तार से परिभाषित किया गया है और यह स्पष्ट कर दिया गया है कि मोक्ष या निर्वाण स्वर्ग और सभी अन्य पुण्य लोकों से ऊपर की स्थिति है। ऐसा उपनिषदों में कम ही हो पाया है। उलटे अनेक उपनिषदों में वेदों की लीक पर चलते हुए स्वर्ग को ही मृत्यु के बाद के उच्चतम गंतव्य की तरह चित्रित किया गया है।

अधिकांश उपनिषदों में वेदों की ही तरह बार-बार स्वर्ग की ही बात होती है न कि मुक्ति, मोक्ष या निर्वाण की-

स एतेन प्राज्ञेनाऽऽत्मनाऽस्माल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गे लोके
सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत् समभवत्॥

(ऐतरेय उपनिषद्, तृतीय अध्याय, श्लोक 4)

(उपासक इसी प्रज्ञ-आत्मा की उपासना से इस मर्त्य लोक से उत्क्रमण कर उस स्वर्ग लोक में सब कामनाओं को प्राप्त कर अमृत हो गया)।

अमृतत्वं देवेभ्य आगायानीत्यागायेत्स्वधां
पितृभ्य आशां मनुष्येभ्यस्तृणोदकं पशुभ्यः
स्वर्गं लोकं यजमानायान्नमात्मन आगायानीत्येतानि
मनसा ध्यायन्नप्रमत्तः स्तुवीत॥

(छान्दोग्य उपनिषद् 2.22.2)

(साम का उद्गाता अपने गायन द्वारा यजमान के लिए स्वर्ग लोक की कामना करे)।

ते वा एते पञ्च ब्रह्मपुरुषाः स्वर्गस्य लोकस्य
द्वारपाः स य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान्स्वर्गस्य
लोकस्य द्वारपान्वेदास्य कुले वीरो जायते प्रतिपद्यते
स्वर्गं लोकं य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान्स्वर्गस्य
लोकस्य द्वारपान्वेद॥

(छान्दोग्य उपनिषद् 3.6)

(पिंड तथा ब्रह्माण्ड में ब्रह्म-पुरुष की यह पाँच झाँकियाँ हैं। यह पाँच शुद्ध रूपी स्वर्गलोक के मानो द्वारपाल हैं, जो स्वर्गलोक के द्वारपाल इन पांच ब्रह्म-पुरुषों को उक्त प्रकार से जानता है, उसके कुल में वीर संतान

उत्पन्न होती है, वह स्वर्ग-लोक को पा जाता है, जो स्वर्गलोक के द्वारपाल इन पांच ब्रह्म-पुरुषों को इस प्रकार जानता है)।

यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गे
लोके ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति॥

(केनोपनिषद्, चतुर्थ खंड, 9)

(जो इस विद्या को इस रूप में जानता है वह पाप का अपहरण करके अत्यंत उत्तम स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होता है, अवश्य प्रतिष्ठित होता है)

स एवं विद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्ध्व उत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गे
लोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत् समभवत्॥

(ऐतरेय उपनिषद् द्वितीय अध्याय, श्लोक 6)

(इस प्रकार वह वामदेव ऋषि शरीर का भेदन करके ऊपर पहुँचकर स्वर्ग लोक में सब कामनाओं को पाकर अमर हो गया)।

स्वर्गलोक या देवलोक की महत्ता और सर्वोच्चता पर अन्य कई श्लोक उपनिषदों में हैं। फिर भी, निश्चय ही उपनिषद इस मामले में वेदों से कई कदम आगे निकल गए हैं, और कुछ उपनिषदों में स्वर्ग से ऊपर के गंतव्य का भी जिक्र आता है. जैसे, बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है-

तदेते श्लोका भवन्ति। अणुः पन्था विततः पुराणो मा
स्पृष्टोऽनुवित्तो मयैव। तेन धीरा अपियन्ति ब्रह्मविदः स्वर्गं
लोकमित ऊर्ध्वं विमुक्ताः॥

(बृहदारण्यक उपनिषद् 4.4.8)

(उसे पाने का मार्ग अणु है, सूक्ष्म है, परंतु सूक्ष्म होता हुआ भी वह सब जगह फैल रहा है। मैंने उस मार्ग को छू लिया है, और टटोल-टटोल कर ही मैं उस तक पहुँच गया हूँ, मैंने उसे पा लिया है। धीर और ब्रह्म-ज्ञानी उसी मार्ग से स्वर्ग लोग को पहुँचते हैं और मुक्त होकर उससे भी ऊपर उठ जाते हैं)

किन्तु उस 'स्वर्ग से भी ऊपर' के गंतव्य का कोई स्पष्ट विचार एकादश उपनिषदों में नहीं मिलता, जब कि भगवद्-गीता ने तो ईश्वर के उस परम धाम का चित्र भी खींचा है, और यह बतलाया है कि वह अव्यक्त प्रकृति से भी परे अंतरिक्ष और काल से परे एक स्वतः प्रकाश अव्यक्त या अमूर्त अस्तित्व है, और वही जीव की 'परमगति' है। इस सम्बन्ध में भगवद्-गीता के कुछ श्लोक देखिए-

अव्यक्ताद्व्यतयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके॥

(भगवद्-गीता : 8.18)

(सारे जीव ब्रह्मा के दिन के आने पर अव्यक्त (प्रकृति) से उत्पन्न होते हैं और ब्रह्मा की रात्रि के आने पर उस अव्यक्त कहे जाने वाले स्थान में ही वापस लीन हो जाते हैं।)

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति॥

(भगवद्-गीता : 8.20)

परंतु उस अव्यक्त से भी अति परे दूसरा अर्थात जो विलक्षण 'अव्यक्त' है, वह सब पदार्थों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

(भगवद्-गीता : 8.21)

मेरे अप्रकट और अविनाशी धाम को, जिसकी प्राप्ति को परमगति कहा जाता है, प्राप्त कर लेने वाले मनुष्य लौट कर (मर्त्यलोक में, पुनर्जन्म के चक्र में) नहीं आते।

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

(भगवद्-गीता : 15.6)

जहाँ जाकर संसार में लौटना नहीं पड़ता, ऐसा मेरा परम स्थान है। उस (स्वयं-प्रकाश परमपद को) न सूर्य प्रकाशित करता है, न चंद्रमा (और) न अग्नि ही वही मेरा परम धाम है।

ब्रह्म-विद्या की और भी बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बातें हैं, आध्यात्मिक ज्ञान है, जो भगवद्-गीता में उपलब्ध हैं लेकिन उपनिषदों में देखने में नहीं आता, जैसे, अवतारवाद का सिद्धांत और सगुण ईश्वर का सिद्धांत, जो बाद में चल कर हिन्दू-धर्म का एक सुदृढ़ आधार स्तम्भ बना।

ऐसे में यह कहना कि गोपालनंदन ने उपनिषदों की गायों का दूध दुह कर भगवद् गीता में प्रस्तुत कर दिया, एक भ्रामक कथन है, क्योंकि जो दूध किसी भी उपनिषद-रूपी गाय में उपलब्ध ही नहीं है, उसे दुहने का सवाल ही कहाँ उठता है? और कहीं उपनिषदों-रूपी गायों की उत्पत्ति के पूर्व श्रीकृष्ण की उत्पत्ति हो चुकी हो, तो भला दुहने के लिए उन्हें ये गायें कहाँ मिलीं? बृहदारण्यक और छान्दोग्य सबसे पुराने और प्रामाणिक उपनिषदों में माने गए हैं। छान्दोग्य उपनिषद् के तृतीय प्रपाठक के 17 वें खंड के छठे श्लोक में 'देवकीपुत्र कृष्ण' का जिक्र मिलता है। यानि श्रीकृष्ण या तो इस उपनिषद के समकालीन थे या पूर्ववर्ती। यह भी गोपालनंदन द्वारा इन गायों को दुहे जाने की बात पर एक और प्रश्नचिह्न खड़ा कर देता है!

उपर्युक्त बातों से उपनिषदों की अवमानना करने का उद्देश्य नहीं है बल्कि सत्य को सामने रख कर ब्रह्मविद्या के ग्रन्थ के रूप में गीताजी की अनूठी और सर्वोपरि तथा उचित गरिमा स्थापित करने का उद्देश्य है।

जिन्होंने सभी प्रमुख हिन्दू शास्त्रों का अनुशीलन गम्भीरता से किया है, वे इस बात को समझते हैं कि वेदों से जिस महान आध्यात्मिक यात्रा की शुरुआत हुई थी, उस यात्रा में कालांतर में क्रमशः हमारे ऋषियों को अधिक ईश्वरीय सत्य प्रकट होते गए, और उपनिषदों से होते हुए उस आध्यात्मिक विकास की परिसमाप्ति भगवद् गीता में स्वयं ईश्वर के अवतार श्रीकृष्ण के हाथों आकर हुई। इसलिए भगवद्-गीता अध्यात्म-ज्ञान और मोक्ष-विद्या पर अंतिम शब्द है। किसी विद्वान ने सत्य ही कहा था कि हिंदू-धर्म का सारा आध्यात्मिक साहित्य नष्ट भी हो जाए और सिर्फ भगवद्-गीता बची रह जाए, तो भी वह पर्याप्त है, और इससे हिन्दू-धर्म की कोई बड़ी हानि नहीं होने वाली। वास्तव में धीरे-धीरे यह समझने की जरूरत है कि जब तक शास्त्रों की विविधता के बीच एक वास्तविक ईश्वर की वाणी वाले शास्त्र को आधार-ग्रंथ के रूप में हिन्दू-धर्म में स्वीकार नहीं किया जाता, तबतक शास्त्रों की बहुलता के बीच हिन्दू अपनी आध्यात्मिक यात्रा में संशय पीड़ित होकर भटकते ही रहेंगे। और यह एक शास्त्र भगवद् गीता के सिवाय कोई अन्य हो ही नहीं सकता, क्योंकि भगवद्-गीता के अलावा कोई भी अन्य शास्त्र सीधे ईश्वर की वाणी नहीं है। ये सभी अन्य शास्त्र ऋषियों और कवियों की ही वाणी हैं, भले ही उनमें से कुछ के पीछे ईश्वर की वास्तविक प्रेरणा भी सक्रिय रही हो।

★★★

उ0 प्र0 ब्रज तीर्थ विकास परिषद ने सजाया कुसुम सरोवर

-रोशनी में सरोवर की मनोहर छटा हर किसी को लुभा रही
-सरोवर की फोटोग्राफी के लिए ठहर जाते हैं भक्तों के कदम

चन्द्र प्रताप सिंह सिकरवार

ब्रज का यह एक एतिहासिक प्राचीन पर्यटक स्थल है। यह कस्बा गोवर्धन से 2 किमी की दूरी पर राधाकुंड मार्ग पर छोटी परिक्रमा में है। ये सरोवर कस्बा राधाकुंड से 25 मिनट की पैदल दूरी पर स्थित है। ये 450 फीट लंबा और 60 फीट गहरा है। यह चारों तरफ से सीढ़ियों से घिरा है। सरोवर के आस पास कई कदम्ब के पेड़ हैं।

मान्यता है कि राधारानी की सखी कुसमा के नाम पर इस सरोवर को कुसुम वन सरोवर कहा जाने लगा था। यहां भगवान श्रीकृष्ण अपनी आराध्य राधाजी के श्रृंगार के लिए फूल एकत्र कर मालायें गूंथा करते थे।

सप्तकोसीय गिरिराज परिक्रमा मार्ग में प्राचीन कुसुम सरोवर ब्रज का एक ऐसा सुंदर स्थल है, जिसे श्रद्धालु निहारते ही रह जाते हैं। विशेषकर सायं काल जब ये सरोवर रोशनी में नहाता है तब इसका आकर्षण शब्दों से बयां नहीं किया जा सकता।

हाल ही में पर्यटन विभाग की योजना के अंतर्गत उप्र ब्रज तीर्थ विकास परिषद ने इसका सुंदरीकरण कराया है। रोशनी से नहाए सरोवर की फोटोग्राफी करने के लिए परिक्रमार्थियों के कदम ठहर जाते हैं। ये सरोवर पुरातत्व विभाग द्वारा संरक्षित है।

काशी, अयोध्या की तरह ही योगीराज में तीर्थाटन व पर्यटन की दृष्टि से मथुरा का कायाकल्प हो रहा है। इसका एक उदाहरण कुसुम सरोवर है। इस सरोवर को सायंकाल निहारने पर अहसास होता है कि किस प्रकार से ब्रज तीर्थ विकास परिषद के प्रयास रंग ला रहे हैं। परिषद के प्रस्ताव पर राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान (नीरी) नागपुर की टीम ने सरोवर की सुंदरता में चार चांद लगाने का प्रारूप तैयार किया था। सुंदरता को देख बाहर के श्रद्धालु और पर्यटक गद्गद हो रहे हैं। गोवर्धन परिक्रमा मार्ग स्थित कुसुम सरोवर की छतरियों में लाइटिंग हो चुकी है, रात में दर्शकों को आकर्षित करती है। सरोवर के एरिया में प्राचीन कुसुम वन रहा था। मान्यता है कि इस वन में श्रीकृष्ण द्वारा राधाजी की वेणी गूंथी गयी थी। इस रूप में भी यह प्रसिद्ध है।

इसके बाद समय गुजरा और साफ सफाई के अभाव से इसकी दुर्दशा भी हुई थी। लंबे समय तक इसका जीर्णोद्धार नहीं हुआ। मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ की अध्यक्षता वाले उप्र ब्रज तीर्थ विकास परिषद के प्रस्ताव पर इसके संपूर्ण सौंदर्यीकरण, लाइट एंड साउंड शो आदि की कार्य योजना बनी। नागपुर के नीरी संस्थान ने उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की निगरानी में इसके पानी को शुद्ध किए जाने के लिए सैंपल लिए। इसके साथ ही गोवर्धन परिक्रमा मार्ग में पड़ने वाले अन्य कुण्डों के जल को भी पीने योग्य बनाने के लिए सैंपल लिए गए।

उ.प्र. ब्रज तीर्थ विकास परिषद ने खारे पानी की समस्या को देखते हुए गोवर्धन परिक्रमा मार्ग क्षेत्र के कुंड और सरोवरों को नहर के पानी से भरने की योजना भी बनाई थी।

★★★

कुसम सरोवर का 450 साल पुराना इतिहास

कुसुम सरोवर का पुराना इतिहास है। यहां पूर्व में कच्चा कुंड था जिसे ओरछा (मध्यप्रदेश) के राजा वीर सिंह जूदेव ने वर्ष 1619 में पक्का कराया था। बाद में वर्ष 1723 में भरतपुर (राजस्थान) के महाराजा सूरजमल ने इसे कलात्मक स्वरूप प्रदान किया था। महाराज सूरजमल के पुत्र महाराजा जवाहर सिंह ने वर्ष 1768 में यहां अनेक छतरियों का निर्माण कराकर इसे सुंदर सरोवर बना दिया था।

सरोवर के पश्चिम में राजा जवाहर सिंह ने अपने पिता राजा सूरजमल और अपनी तीनों माताओं क्रमशः किशोरी, हंसिया तथा लक्ष्मी की स्मृति में एक ऊंचे चबूतरे पर अत्यंत कलात्मक छतरियों का निर्माण कराया। मुख्य छतरी राजा सूरजमल सिंह की है। इसके भीतरी भाग में सूरजमल के जीवन और भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं से संबंधित चित्र निरुपित हैं।

कुसुम सरोवर के दक्षिण पूर्व कौने में लगे शिलालेख से ज्ञात होता है कि मुगल सम्राट अकबर ने जीव हिंसा पर रोक लगाने का फरमान जारी किया था। इस शिला लेख पर वर्ष 1855 ई. में अंकित एवं अन्य अभिलेखों से ज्ञात होता है कि अग्रजों ने भी अकबर की इस नीति का अनुसरण किया था। यह राज्य सरकार के पर्यटक स्थलों की सूची में प्रमुख स्थान पर है। फिलहाल ये पुरातत्व विभाग के संरक्षण में है। वर्ष 2022 में स्मारक मित्र योजना के तहत इसके देखभाल की जिम्मेदारी जीएलए विश्वविद्यालय को सौंपी गयी है।

भारत की लोक कलाएं

डॉ. भारती परमार

भारत देश विभिन्न क्षेत्र, संस्कृतियों (वेश-भूषा, खान-पान, रहन-सहन) का एक गण है। जहां ऐसे अनेक पहलू हैं जिसके द्वारा उस क्षेत्र विशेष की पहचान प्राप्त होती है। जनमानस की अभिव्यक्ति जो उसकी रोजमर्रा के कार्यों में, व्यक्त होती है उन्हें ही लोक कला का दर्जा दिया जाता है। लोक कलाएं एक सशक्त माध्यम होती है उस क्षेत्र विशेष को जानने और समझने के लिए, भारत कला एवं संस्कृति से परिपूर्ण राष्ट्र है।

लोक कला एक तरह से बाल सुलभ कला है। जिस प्रकार बालक बिना सीखे किसी आकृति का अंकन करता है और उसकी कला में रेखाएं महत्वपूर्ण होती हैं। उसी प्रकार लोक कला में अनगढ़ सरल रेखाओं का महत्व होता है। लोक कला ऐसी कला है जिसको हम दैनिक जीवन से संबंधित अवसरों पर कर सकते हैं।

लोक कलाकारों को अपनी कलाकृति के निर्माण के लिए पदार्थों का चयन करना होता है, चयन के उपरान्त संयोजन का क्रम आता है। संयोजन के अभाव में पदार्थ प्रभावशाली रूप ग्रहण नहीं कर सकता इस प्रकार चयन और संयोजन किसी भी माध्यम के दो अनिवार्य तत्व है जिनसे कलाकृति का निर्माण होता है। लोक शब्द अत्यंत व्यापक और सम है, लोक की सीमा केवल ग्राम या साधारण जनता तक ही नहीं है, ऐसा संकीर्ण अर्थ लोक कला के लिए घातक है, समस्त चराचर में "लोक" की समूची अलंकृति ही परम उपादेय और मांगलिक है।1

लोक का संक्षिप्त परिचय भारतीय कला को समझने की कुंजी है अथवा कला की सहायता कला के विश्वरुपी जीवन को समझने का साधन प्राप्त कर सकते हैं। भारतीय चित्रकला में एकदृढ़ पक्ष लोक पक्ष है। ऋग्वेद में लोक शब्द का प्रयोग जनसाधारण के लिए किया गया है। भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में लोकधर्म और नाट्य धर्म प्रवृति का उल्लेख किया है। लोक कला में लोक की प्रधानता होती है। इसमें आरंभिक रंगो में गेरु, खड़िया, रामरज, पेवड़ी आदि का प्रयोग मिलता है। लोक कला में प्राथमिक रंगो का प्रयोग इस बात का द्योतक है कि प्रागैतिहासिक कला तथा लोक कला के रंगो में ज्यादातर समानता देखी जाती है, परन्तु लोक कला में विकसित रंगो का प्रयोग अत्यधिक किया जाने लगा है। लोक कला में मुख्य रूप से चित्रकला में धरातल के रूप में घरों की दीवार तथा जमीन का प्रयोग होता है इसके अलावा घरों के दरवाजे पर भी चित्रण किया जाता है इसमें कभी-कभी पूर्ण रूप से कहानी का चित्रण भी दृष्टिगोचर होता है इसके अन्तर्गत धार्मिक आख्यान पौराणिक आख्यान आदि को चित्रित किया जाता है। लोक चित्र में मानव को लोक जीवन की भावनाओं को चित्रित करने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है।

लोक कला के अन्तर्गत देवी-देवताओं को अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना गया है, यहां प्रकृति को प्रथम देव स्वीकारा गया है। लोक कला प्रागैतिहासिक कला का विकसित रूप जान पड़ता है, सभ्यता और धर्म के विकास के साथ-साथ यहां देवी-देवताओं में भी अनेक भिन्नता मिलती है।

लोक कला का अध्ययन गत शताब्दी से ही आरंभ हुआ है। इसके पूर्व इस कला की ओर किसी का ध्यान भी नहीं गया था। जब से इसका अध्ययन आरंभ हुआ है, इसकी सीमाओं और परिभाषा के संबंध में विद्वानों में यथेष्ट मतभेद रहा है। फिर भी इतना स्पष्ट है कि लोक कला मानव-सभ्यता के विकास के इतिहास में एक और आदिम कला और दूसरी ओर सुसंस्कृत कला के मध्य स्थित रही है।2

लोक कलाएं चित्र सभ्यता की विकसित संस्कृति को दर्शाती है, इसी के साथ हमारी परंपरा का उदय भी निहित है यह हमारी सभ्यता को और अधिक दृढ़ बनाती है, सही मायने में चित्रकला की प्रगति में लोक कला का योगदान है। यह सभ्यता और संस्कृति के विकास की परिचायक है।

लोक चित्र प्रागैतिहासिक कला की भांति मनोरंजन के लिए बनाये जाते थे। धीरे-धीरे यह मनोरंजन के साथ उपयोगी कला बन गयी। सामूहिक चित्र सौन्दर्यमूलक और आत्मिक सुख यही मनोरंजन के अभिप्राय हैं, इन तत्वों की समानता प्रागैतिहासिक चित्रकला में दृष्टव्य होती है।

लोक कला प्राय: धार्मिक आख्यानों, धार्मिक परम्पराओं, धार्मिक प्रतीकों एवं काल्पनिक पौराणकि प्रसंगों के अतिरिक्त सामाजिक, त्योहारों, सामाजिक मान्यताओं की पृष्ठभूमि पर आधारित होती है एवं इसका चित्रण भित्तियों, कागजों (विशेषत: हाथ द्वारा निर्मित कागज), दीवारों पर जलरंगों तथा भूमि पर धुलि रंगों द्वारा चित्रित की जाती है।3 लोक कला का संबंध प्रदेश विशेष से भी होता है यह आदिवासी कलाओं की अपेक्षा विस्तृत होता है। भाषा तथा बोली के बीच जो अंतर होता है ठीक वैसा ही अंतर लोक कला तथा आदिवासियों की कला के बीच होता है।

लोक कला में अगर हम लोक चित्र को देखें तो ज्ञात होता है कि यह पारम्परिक रूप से लिखा गया होता है इसमें लोक पर्व त्यौहार, अनुष्ठान और संस्कार में लोक चित्रों का आलेखन अनिवार्य रूप से होता है लोक चित्रों में बिन्दू, रेखा, त्रिभुज, आयत, वृत्त, कोण आदि का प्रयोग होता है और उनके संकेतात्मक अर्थ होते हैं।4

भारतीय लोक कलाओं की जड़े बहुत मजबूत है यह हमारे देश की खास पहचान के रूप में जानी जाती हैं। हर प्रदेश की अपनी कुछ खास लोक कलाएँ है जो उस प्रदेश की संस्कृति की विशेषताएं लिए हुए है।

कलमकारी (आंध्रप्रदेश)

आंध प्रदेश के मछलीपट्टनम तथा श्रीकालहस्ती में कलमकारी की जड़ें विद्यमान हैं। इसका नाम कलम अथवा लेखनी से संबंधित है, जिसे इन अति सुन्दर कलाओं को निर्मित करने के लिए प्रयोग किया जाता है। प्रयोग की गई लेखनी नुकीले नोक वाले बांस से निर्मित होती है, जिसे रंगो के प्रवाह को विनियमित करने लिए प्रयोग किया जाता है। इसका आधार सूती वस्त्र होता है जबकि प्रयोग किए गए रंग वनस्पति रंजकों से निर्मित होते हैं। 5

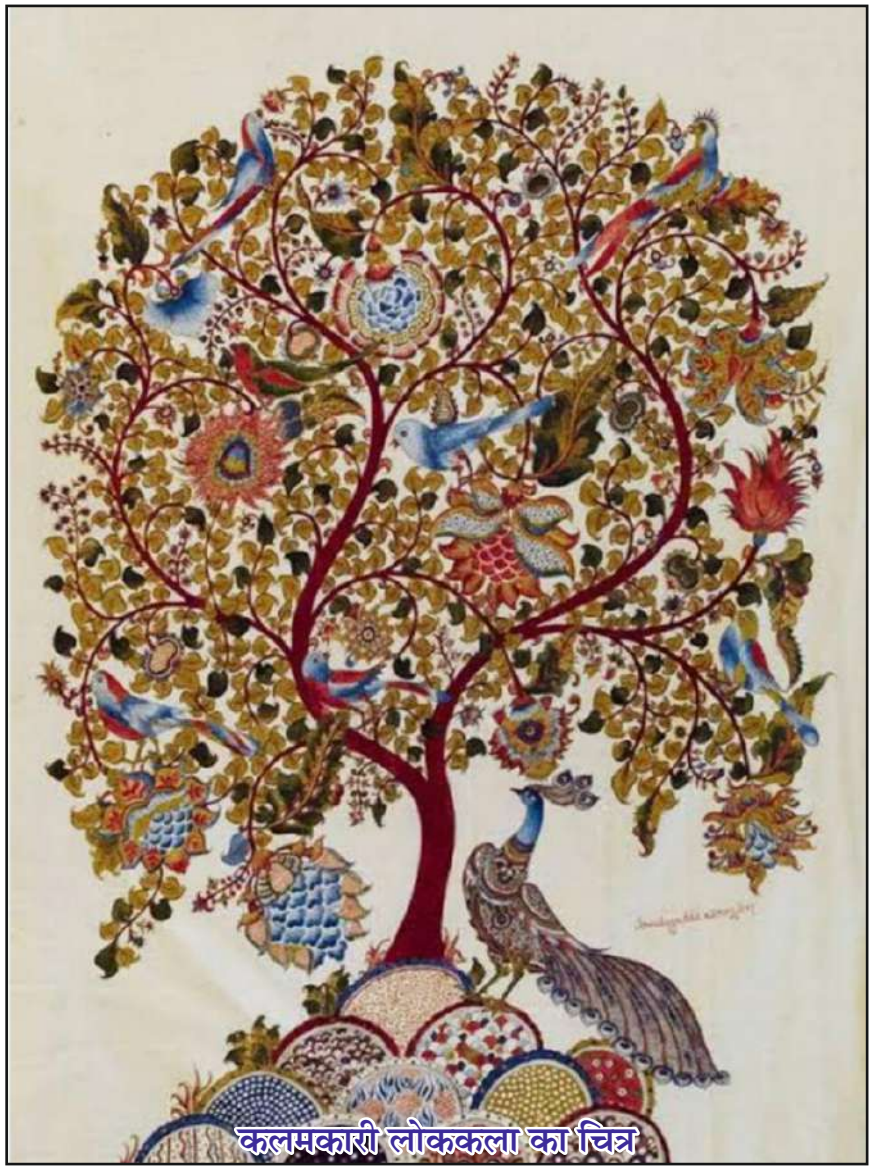
कलमकारी लोककला का चित्र

इन कलाओं का स्वरूप मूल रूप से धार्मिक रहा है परंतु समय के साथ इनमें भी कुछ परिवर्तन देखे जा सकते हैं। कलमकारी में कलाकृतियाँ फूल-पत्तियों के अंलकरण से सजी-धजी हुई होती हैं तथा इन का विषय भी रामायण, महाभारत एवं पुराण संबंधी होता है। परिवार के साथ मिलकर सभी सदस्य इन लोक कलाओं को चित्रित करते हैं। ज्यादातर पीढ़ी दर पीढ़ी कार्य चलता रहता है। हालांकि समय के बदलते दौर में इसमें दैनिक जीवन से संबंधित दृश्यों के चित्रण भी होने लगे हैं।

तकनीक माध्यम की बात करें तो कलमकारी की तकनीक व माध्यम अत्यंत रोचक है। सूती कपड़े को गाय के दूध में एक घंटे भिगोकर रखा जाता है। तदुपरांत पानी मिले खमीरी गुड़ के द्वारा बांस की कूची के द्वारा चित्रांकन किया जाता है। रंगो को भरने वाले स्थान पर फिटकरी का घोल लगाया जाता है। इसके कारण रंगो का उभार स्पष्ट होता है। कलमकारी के अलंकरण फारसी, डिजाइन से अत्यधिक प्रेरित होते है। ऐसा माना जाता है कि 10 वीं शताब्दी में इस कला की शुरुआत हुई है। सर्वप्रथम इसका प्रयोग दीवारों पर तत्पश्चात कपड़ो पर किया जाने लगा।

मांडना (राजस्थान)

मांडना राजस्थान की लोक कला है। इसके अन्तर्गत ज्यामितीय आकृतियाँ बनाई जाती हैं, घर में उत्सव, पर्व, त्योहार पर इन्हें बड़ी खुशी के साथ उकेरा जाता है। 6 यह राजस्थान के मालवा क्षेत्र से संबंधित कला है इसके अंतर्गत स्वास्तिक, त्रिकोण, चतुष्कोण, षटकोण, अष्टकोण, चौपड़, घूघरा, फूल, बेल, कमल, अष्टदल

कमल आदद बनाए जाते हैं। घरों के द्वार एक देहरी पर द्वारपाल चित्रित किए जाते हैं। कहीं-कहीं ऐसा आभास होता है कि पुरातन शिल्पकृतियों को उतार दिया गया हो।

पारंपरिक रूप से यह आकृतियां मायमाता कही जाती हैं इन्हें विवाह के अवसर पर वर-वधू के घरों में उकेरा जाता है।

इनमें अलग-अलग स्वरूपों को भी देखा जा सकता है जिस प्रकार मायमाता को विवाह के अवसर पर बनाया जाता है,7 उसी प्रकार पागलया में खासतौर पर बच्चों के पद चिन्ह, पालना, घूंघरू, खिलौना आदि आकृतियां बनाई जाती हैं। किसान अपने घरो में हल आदद की प्रतीकात्मक आकृतियां बनाते है। भारत में अनेक क्षेत्रीय लोक कलाओं को उकेरने का श्रेय महिलाओं को ही जाता है। मांडना की यह लोक कला मेहंदी के रूप मे भी रची जाती है। इसमें भी चौपड़, मोर, चंदा, छल्ला, सूरज, त्रिकोण, चतुष्कोण, षटकोण तथा भांति-भांति के अलंकरण बनाए जाते हैं।

मांडना की लोककला का चित्र

पटुआ (बंगाल)

बंगाल की यह कला, पटुआ कला लगभग हजार वर्ष पुरानी है। यह मंगल कार्यों या हिंदू देवताओं और देवियों की शुभ कहानियों को वर्णित करने वाले चित्रकारों की ग्रामीण परंपरा के रूप में प्रारम्भ हुई। इन चित्रकलाओं को पटों पर निर्मित किया जाता था और कई पीढ़ियों तक स्क्रॉल चित्रकार या पटुआ उनमें निहित कहानियों को गाने के लिए विभिन्न गांवो में जाया करते थे। अधिकतर पटुआ मुसलमान होते हैं परंपरागत रूप से ये कपड़े पर चित्रित की जाती थी और धार्मिक कहानियों को वर्णित करती थी। आजकल इन्हें एक साथ सिली गयी कागज की शीटों पर पोस्टर रंगां से चित्रित किया जाता है और सामान्यत: राजनीतिक और सामाजिक मुद्दों पर टिप्पणी करने के लिए प्रयोग किया जाता है यह पटुआ मिदनापुर क्षेत्र, मुर्शिदाबाद, उत्तर एवं दक्षिण 24 परगना बीरभूम जिले से संबंधित हैं।8

कोहबर लोककला का चित्र

कोहबर

(उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड)

कोहबर एक प्रसिद्ध लोक कला है। बिहार एवं उत्तर प्रदेश में शादी के अवसर पर ऊपर बनाने की प्रथा है इसके अंतर्गत वर वधु को कोहबर वाले देवता घर में बिठाया जाता है जहां दीवार पर कोहबर देवता तथा उनकी पत्नी को प्रतीक रूप में चित्रित किया जाता है ऐसी मान्यता है कि यह वर वधू के विवाह को पूर्ण रुप से संपन्न करते हैं और उनके जीवन में खुशियों का आगमन होता है उनकी पूजा की जाती है सालभर इस चित्र को सुरक्षित रखा जाता है इसी प्रकार दशहरा में दशमी के दिन राम के चरण चिन्ह को चित्रित किया जाता है। मिथक रूप में इन सभी देवी–देवताओं का रूप कभी–कभी देवताओं की मूर्तियां भी ले लेती है इनको चौराहे पर रखा जाता है और उनकी पूजा की जाती है ।

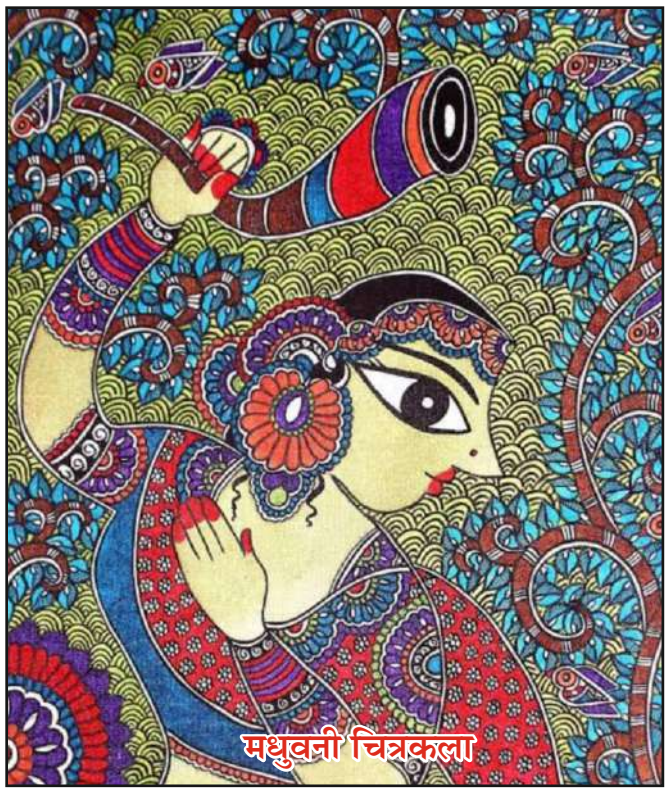

मधुबनी चित्रकला

मधुबनी चित्रकला (बिहार)

परंपरागत रूप से मधुवनी शहर (बिहार) के आसपास ग्रामीण महिलाओं द्वारा की जाने वाली इस चित्रकारी को मिथिला चित्रकारी भी कहा जाता है। इस चित्रकला में मुख्य रूप से धार्मिक रूपांकनों जैसे राम, कृष्ण, दुर्गा, लक्ष्मी, गणेश, शिव आदि से प्रेरित हैं। इस चित्रकला के चित्र सांकेतिक है, उदाहरणार्थ मछली सौभाग्य और जनन क्षमता की द्योतक है।

ये चित्रकला जन्म, विवाह, त्यौहारों जैसे शुभ अवसरों को चित्रित करते हुए निर्मित की जाती है। इस चित्रकारी में किसी भी प्रकार के अंतराल को पूरा करने के लिए, पुष्पों, वृक्षों, जन्तुओं इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। पारंपरिक रूप से इन्हें गाय के गोबर और मिट्टी से लेप, निर्मित आधार

(दीवार भूमि) पर चावल की लेई और वनस्पतियों के रंगों से निर्माण किया जाता था पर समय के साथ परिवर्तन होने पर अब ये हस्त निर्मित कागज, वस्त्र और कैनवास अब आधार के रूप में प्रयोग किए जाते है। कोई छाया प्रभाव न होने के कारण यह चित्रकला द्विआयामी होती है। दोहरी पंक्ति का किनारा, गहरे रंगो का प्रयोग, अलंकृत पुष्पित पैटर्न और अंतिरंजित मुख मुद्रायें इस चित्रकला की सामान्य विशेषता है। अधिकतर महिलाओं द्वारा ही मधुबनी चित्रकला कौशल को पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित किया गया है, इस कला के लिए अब तक, बिहार की सात महिलाएं पद्मश्री पुरस्कार प्राप्त कर चुकी है। चूंकि यह कला एक विशिष्ट भू-भाग तक सीमित रही है, इसलिए इसे जी.आई टेग (भौगोलिक संकेत) की प्रतिष्ठा भी प्रदान की गयी है।

वर्ली लोककला (महाराष्ट्र)

वर्ली लोक कला मूल रूप से आदिवासी कला है। परंतु कुछ कलाकारों द्वारा इसे लोक कला का दर्जा एवं वैश्विक स्तर पर पहचान दी गई है चूंकि यह आदिवासी कला थी अत: यह कहना है कि इसकी शुरुआत कब हुई। परंतु संभावना यह है कि इसकी शुरुआत अक्षर ज्ञान से पहले की है। ये कलाकृतियां सामान्य रूप से विवाह में बनाना अति आवश्यक मानी जाती है। वर्ली कला में प्रकृति प्रेम को बड़ी गहराई के साथ अनुभव किया जा सकता है। इस कला में त्रिकोणीय आकृतियों का बड़ा महत्व है। सभी आकृतियों को त्रिकोणमिति में बनाया जाता है जैसे प्रकृति में पहाड़, पेड़-पौधे, आदि साथ ही इसमें, दैनिक जीवन से संबंधित दृश्य चित्र भी बनाए जाते है। प्रतीकात्मक होते हुए भी यह आकृतियां बड़ी ऊर्जावान तथा अभिव्यक्ति से भरी प्रतीत होती है।

समकालीन समय में वर्ली कलाकृति के लिए कागज और कैनवास का प्रयोग किया जा रहा है पहले इसे गोबर मिट्टी से लिपे हुए धरातल पर चावल को पीसकर उसमें पानी मिलाकर तैयार घोल से बनाया जाता था।

वर्ली हमेशा त्रिकोणीय रेखा में बनाया जाता है। यदा-कदा सीधी लाइने देखने को मिलती है, जो एक अपवाद मात्र है समकालीन समय में वर्ली कपड़ो पर, कैनवास पर, बोर्ड पर बनायी जाती है और घरों को सजाने में उपयोग में लायी जाती है यह कला आज भारत का सिरताज है।

बैगा कला (मध्य प्रदेश)

बैगा कला की शुरुआत म.प्र. के गौड़ जनजातियों द्वारा मानी जाती है। वास्तव में बैगा कला टैटू कला है। जिसका समकालीन रूप कैनवास पर उतर आया है और आज यह लोगों के बीच लोक कला के रूप में जानी जाती है बैगा कला के अंतर्गत यह जनजातियां अपने शरीर पर टैटू बनवाती हैं यह प्रथा 8 से 9 साल की उम्र में खासकर औरतें इसे अपने शरीर पर गुदवाती है। म.प्र. के उमरिया गांव में आज बैगा कला को संरक्षित करने का भरपूर प्रयास चल रहा है। आज बैगा कला में 80 साल की जुदाईया बाई की पेंटिंग आज, देश-विदेश में नाम कमा रही है, कि वह कहती है हम जो देखते है वही बनाते है। जंगल, पेड़, पौधे, जानवर आदि सब हमारे देवता स्वरूप हैं। इन चित्रों में गोबर, चूना, गिरी, खड़िया, मिट्टी के साथ- साथ सिंथेटिक रंग भी प्रयोग में लाए जाते हैं। जुदाईया बाई का कहना है कि पहले वह जंगल जाती थी और अब जंगल बनाती हैं।

बैगा लोककला

बैगा घरों की दीवारों पर भी सौन्दर्यात्मक अलंकरण बनाते हैं मुख्य द्वार के आसपास गेरु और काजल से दोहरी मोटी रेखाएं उकेरते हैं दरवाजे और चौखट पर भी इसी तरह अलंकृत करते हैं।9

सांझी लोक कला

(मथुरा, ब्रज उत्तर प्रदेश)

साँझी मुख्य रूप से चित्रकला के अन्तर्गत लोक कला मानी जाती है। यह कला रंगोली का रूप है। सामान्यत: सांझी लोककला हरियाणा, राजस्थान, जुला म.प्र. में भी बनाई जाती है। सांझी अर्थात सांयकाल को बनाई जाने वाली कला, ब्रज मे ऐसी प्रथा है कि इसे शाम को बनाना शुभ होता है। कथा के अनुसार राधा स्वयं कृष्ण को रिझाने लिए तरह-तरह के फूलों द्वारा नए-नए अलंकरण भूमि पर बनाती थी जब भी कृष्ण उनसे मिलने आया करते थे।

गोबर द्वारा निर्मित सांझी कला

वर्तमान में सांझी के अलग-अलग रूप देखने को मिलते जैसे कहीं गोबर से, कहीं सूखे रंगों से और कहीं रंगीन पत्थरों से यह कला की जाती है क्वार महीने के कृष्ण पक्ष में कुंवारी कन्याएँ इस कला को खास तौर पर बनाती हैं इसके विषय अधिकतर राधा और कृष्ण होते है। सांझी कला में महीन अलंकरण होते है। जिसे कांच के टुकड़े फूल, चमकीले कागज, कौड़ी आदि से सजाया जाता है, प्रदोष काल में सभी कन्याएँ एकत्रित होकर अपनी क्षेत्रीय परम्परा के अनुसार गीत गाती है। एक दीपक जलाती है और आरती करती है। अलग-अलग दिन अलग-अलग नियत पकवान या मिठाई का भोग लगाती है।

स्टेंसिल से निर्मित सांझी कला

सांझी का एक नियम है प्रत्येक दिन संध्या के समय आरती के उपरान्त भोग लगाकर शयन आरती के पश्चात् रात्रि में मिटा दी जाती है और अगले दिन नवीन सांझी का निर्माण होता है। इस सांझी ने ब्रज में महत्वपूर्ण लोक कला का स्थान ले लिया है। समय के साथ यह कला सांझी का खेल महंगा होने के कारण विलुप्त होने लगा है। 10

लोक कलाओं का क्षेत्र बहुत विस्तृत है कोई भी प्रदेश इससे अछूता नहीं है। उत्तर प्रदेश में चौक पूरना, महाराष्ट्र में रंगोली, तमिलनाडु में कोलम गुजरात और मध्यप्रदेश में पिथौरा, उड़ीसा की झोटी चित्रकला और बंगाल की कालीघाट चित्रकला यह सभी लोक कलाओं के उदाहरण है।

ये कलायें अपनी प्रसिद्धि की परवाह किये बिना अपने भोलेपन के साथ पारिवारिक और सामाजिक तौर पर आगे बढ़ रही हैं। अपने परिवर्तित रूप के साथ आज भी इन लोक कलाओं का अत्यधिक महत्व है। समकालीन कला में लोक तत्वों का प्रयोग सुन्दरता के साथ उपयोग किया जा रहा है। सही मायने में यह अपनी परंपरा को लेकर आगे बढ़ रहे हैं। एवं समकालीन अमूर्त चित्रकला में अपना स्थान बना रही हैं। समकालीन लोककला को भारत सरकार द्वारा कई प्रकार के सम्मान से सम्मानित किया जाता रहा है और आज के समय में बहुत से ऐसे लोक कलाकार हैं जो लोक कला के मूल स्वरूप को अपने प्रयासों के द्वारा संजोए हुए हैं।

★★★

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. श्रीलाल राम भारतीय लोकसंस्कृति की आध्यात्म भूमि 86 लोक संस्कृति अंक
2. डॉ. अग्रवाल गिर्राज किशोर 'अशोक' कला निबंध पृष्ठ संख्या 162, ललित कला प्रकाशन अलीगढ़ (उ.प्र.)
3. डॉ. वर्मा, महेन्द्र, मामुलिया 82, बुंदेलखण्ड साहित्य अनुदम प्रकाशन
4. चौमासा 53, 55 आदिवासी लोककला प्रकाशन भोपाल 2006, वर्ष 21, अंक 66 नवम्बर 04 फरवरी 06
5. सिंघानिया नितिल, भारतीय कलाएं एवं संस्कृति, 2.29 Mc Graw Hill education (India) Pvt. ltd.
6. अग्रवाल पृथ्वी कुमार, प्राचीन भारतीय कला एवं वास्तु 63, 64 ISBN 935–1460029
7. जोशी ईसा नारायण, मालवा की लोकचिकता प्र.–7 विश्व भारतीय प्रकाशन
8. सिंघानिया नितिन, भारतीय कलाए एवं संस्कृति, 2.29 तृतीय संरकरण MC Graw Hill education (India) Pvt. ltd.
9. निरणुणे वसन्त सम्पदा पू. सं. 179 म.प्र. संस्कृति परिषद्
10. उपाध्याय, कपिल देव, ब्रज लोक सम्पदा, 13 ISSN-2320-2858 अक्टूबर 2022

धरणीधर

सत्य प्रकाश शर्मा

ब्रज सीमा के सम्बंध में श्री नारायण भट्ट कृत ब्रज भक्ति विलास में भी वर्णित है, जिसका संस्करण गौड़ीय विद्वान बाबा कृष्णदास ने प्रकाशित किया है। उसमें श्लोक पाठ इस प्रकार है–

पूर्व हास्यवनं नीय पश्चिमस्यापहाकिंरक।
दक्षिणे जन्हु संज्ञाकं भुवनाख्यं तथोत्तरे॥

ऐसी ही एक दोहाबद्ध

इत वरहद इत सोनहद, उत सूरसेन कौ गांव।
ब्रज चौरासी कोस में, मथुरामंडल धाम॥

ब्रज विस्तार से सम्बंधित दोहा गर्गसंहिता में थी निम्न प्रकार से वर्णित है–

प्रागुदीव्यां वर्हिषदो दक्षिणास्यां यदोः पुरात।
पश्चिमायां शोणापुरान्माथुरंमंडलं विदुः॥
विशंधोजन विस्तीर्ण सार्द्धयधोजने नवै।
माथुरंमंडलं दिव्यं व्रज माहुर्मनीषिण॥

नन्दराय जी के पूछने पर सन्नंद जी ने ब्रज का परिचय देते हुए कहा था– "जिसके पूर्व–उत्तर में वर्हिषद (बरहद) है, दक्षिण में यदुपुर (सूरसेन ग्राम) है, पश्चिम में शोणपुर (सोनहद) है, उस 20 योजन विस्तृत दिव्य माथुर मंडल को मनीषी 'ब्रज' कहते हैं।

इसी आधार पर मैंने भी अपनी पुस्तक "खोय गयी ब्रजधुरि" में लिखा है–

पश्चिम बन पर्वत मिले पूरब बन बनहास।
उत्तर सूर्यपत्तन बन दखिखन जनहूँ घास॥

इसी आधार पर ब्रज की सीमा के अंतर्गत आने वाले ब्रज भूमि पर एक ऐसा तीर्थ स्थल जो भगवान विष्णु के दो अवतारौ से जुड़ा हुआ है। ऐसी मान्यता है कि यहाँ त्रेतायुग में भगवान राम ने महर्षि विश्वामित्र की तपस्या

पूर्ण कराने हेतु अपने अनुज लक्ष्मण के साथ ताड़का एवं अन्य असुरों का वध किया था ,वहीं द्वापर में श्री बलदाऊ व ब्रज तारणहार श्रीकृष्ण ने लीलाएं की थी, ब्रज का वह पावन स्थान है पुण्यतीर्थ स्थल धरणीधर सरोवर। पहले यह नगर विश्वामित्रपुरी के नाम से विख्यात था, कालांतर में इसका नाम बेसवां पड़ गया। यह एक ऐसा पर्यटन स्थल है जो लाखों श्रद्धालुओं की आस्था का केंद्र है। सांस्कृतिक, आध्यात्मिक व धार्मिक इतिहास को सजोए यह स्थल पर्यटन की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है श्रद्धालु यहां परिक्रमा व स्नान कर स्वयं को धन्य मानते हैं।

ब्रज में वैसे तो अनेक तीर्थ स्थल, सरोवर हैं लेकिन जिस स्थान पर धरती को धारण किया गया, जो कि अलीगढ़ जिले की इगलास तहसील के कस्बा बेसवां में मथुरा-अलीगढ मार्ग पर स्थित है। यह स्थल श्रीकृष्ण जन्मस्थली से लगभग 30 किमी, यमुना एक्सप्रेस से महज 20 किमी की दूरी पर स्थित है। धरणीधर का अर्थ है जहां धरती को धारण किया गया। कहा जाता है की यह स्थल पृथ्वी का नाभि केंद्र है। ब्रज चौरासी कोस क्षेत्र के अंतर्गत यह पौराणिक व धार्मिक स्थल श्रीकृष्ण जन्मस्थली के निकट है।

ऋषि विश्वामित्र की यज्ञ स्थली

त्रेतायुग में ऋषि विश्वामित्र ने जन कल्याण के लिए यज्ञ किया था। यज्ञ करने के लिए ऋषि विश्वामित्र ने पृथ्वी के नाभि केंद्र को चुना, जिससे समस्त विश्व को यज्ञ का लाभ प्राप्त हो सके। ऋषि का यह यज्ञ स्थल ही धरणीधर के नाम से विख्यात हुआ। बताया जाता है कि यज्ञ में ताड़का सहित अन्य राक्षस व्यवधान डालते थे। इसके चलते विश्वामित्र अयोध्या से श्रीराम व लक्ष्मण को अपने साथ यहां लाए, जिन्होंने ताड़िका नामक राक्षसी का वध किया। बाद में यज्ञ कुंड ही धरणीधर सरोवर हो गया। द्वापर युग में भगवान श्रीकृष्ण ने यहां गौचारण लीला की। श्रीकृष्ण व श्री बलदाऊ के चरण पड़ने से ब्रज में यहां का अलग ही महत्व है। माना जाता है कि धरणीधर की परिक्रमा से 84 कोस की परिक्रमा का पुण्य मिल जाता है। यहां बड़ी संख्या में आसपास के श्रद्धालु दंडौती परिक्रमा लगाते हैं। परिक्रमा लगाने वालों को निश्चित ही मोक्ष की प्राप्ति होती है ऐसी मान्यता है। यहां वर्ष में कई मेले भी आयोजित होते है।

संतो की तपोभमि

यह संत निर्भयानंद, महाराज सर्वरानंद, वटुकनाथ, शंकरानंद महाराज की तपोभूमि भी रहा है। धरणीधर सरोवर के दक्षिणी घाट पर संतो ने समाधियां ली हैं, जिससे इस घाट का नाम समाधिघाट हो गया। श्रद्धालुओं का कहना है कि जो सच्चे मन से यहां पर कोई मनोकामना लेकर आता है उसकी मनोकामनाए सरोवर में स्नान करने व यहां स्थापित मंदिरों के दर्शन व पूजा अर्चना से पूरी होती है। इस सरोवर का ही प्रभाव है कि यहां पर पानी मीठा है जबकि आस-पास क्षेत्र में नमकीन पानी है।

प्राचीन मंदिर

सरोवर के तट पर वनखंडी, भूतेश्वर, रुद्रेश्वर, धरणेश्वर महादेव, मां काली, दाऊजी, बिमलादेवी, दक्षिणमुखी हनुमान, श्रीराम मंदिर के दर्शन होते हैं।

भूतेश्वर महादेव

धरणीधर सरोवर के समीप ही पश्चिम तट पर भूतेश्वर महादेव विराजमान हैं। मान्यता है कि भूतेश्वर अपने भक्तों की मनोकामना पूरी करते हैं इस लिए स्थानीय ही नहीं अपितु दूरदराज क्षेत्रों के श्रद्धालुओं की आस्था का केंद्र हैं। बताया जाता है कि तीर्थधाम धरणीधर पर लगभग चार सौ वर्ष पहले संत जीवाराम आए थे। उन्होंने धरणीधर सरोवर के पश्चिम दिशा में 108 कपालों पर भगवान शिव की प्रतिमा को सिद्ध कर सिद्ध यंत्र पर विराजमान किया था। इसी शिवलिंग को भूतेश्वर कहते हैं। यहां शिव स्वयं शिवलिंग के रुप में विराजमान हैं। यहीं पर समाधि घाट व मां काली का मंदिर है। बताया जाता है कि यहां बारह माह शिव शक्ति मौजूद रहती है। यहीं पर आपदा उद्धारक सिद्ध यंत्र भी है। यहां पूजा अर्चना करने से सिद्ध व मनबांछित फल प्राप्त होता है।

धरणेश्वर महादेव

धरणीधर सरोबर के तट पर धरणीश्वरनाथ महादेव का मंदिर है। इसे बारहद्वारी के नाम से भी जाना जाता है। बताया जाता है कि राजा गिरप्रसाद शिव भक्त थे। वह जहां भी जाते शिवलिंग को अपने साथ लेकर जाते थे। शिवलिंग पर नित्य रुद्राभिषेक करते थे। 150 वर्ष पहले स्वामी शंकरानंद महाराज के द्वारा राजा ने धरणीधर सरोवर के दक्षिण दिशा में उक्त शिवलिंग की स्थापना करा दी। सावन के महीने में स्वामी जी और उनके शिष्य रुद्राभिषेक व

रुद्राष्टाध्यायी पाठ करते थे। इस लिए इस शिवलिंग को सिद्ध माना जाता है। हाथरस की एक सेठानी ने मंदिर का निर्माण कराया। मंदिर के बारह द्वार होने के कारण इसे बारहद्वारी मंदिर भी कहा जाता है।

बनखंडी महादेव

बताया जाता है कि यज्ञ को संपन्न करने के लिए विश्वामित्र जी अयोध्या से श्रीराम व लक्ष्मण को लेकर यहां आये थे। श्रीराम ने यहां एक शिवलिंग की स्थापना की थी जिसे आज वनखंड़ी महादेव के नाम से जाना जाता है। वनखंड़ी महादेव धरणीधर के श्रीराम मंदिर के पास है।

रुद्रेश्वर महादेव

यह शिवलिंग धरणीधर सरोवर के गोवर्धन घाट पर स्थित है। शिवलिंग की स्थपना 280 वर्ष पहले हुई थी। पुत्र रत्न की प्राप्ति के लिए सदाशिव राठी ने धरणीधर सरोवर पर पक्का घाट निर्माण कराया था। तब यह शिवलिंग धरणीधर सरोवर के अंदर खुदाई में निकला था। इसके बाद वहीं घाट के किनारे शिव भक्तों ने शिवलिंग की स्थापना करा दी। इस शिवलिंग को यहां सबसे प्राचीन माना जाता है। मंदिर की विशेषता यह है कि शिवलिंग काले व लाल रंग के पत्थर का बना है। उस पर 108 रुद्राक्ष की नक्काशी की गई है, साथ में शिव के गढ़ नागराज भी हैं। शिवलिंग के सामने हनुमान गढ़ व बाए प्राचीन सूर्य यंत्र है। श्रावण मास में यहां दूर दराज से श्रद्धालु दर्शन के लिए आते हैं। देव दीपावली पर धार्मिक कार्यक्रमों का अयोजन होता है।

बेसवां के इस तीर्थस्थल पर रुद्रेश्वर महादेव दक्षिण दिशा में गोवर्धन घाट और जगन्नाथ घाट के मध्य विराजमान हैं। यह तीर्थ ब्रज 84 कोश परिक्रमा में आता है। इसके निकट ही माँ पूंठा वाली का भी मंदिर हैं बारहद्वारी प्रभु भोले नाथ जी और राममंदिर छोटे शहर में भी प्रसिद्ध है।

★★★

मथुरा डॉक पंजीयन संख्या-070/2022-24 पंजीयन संख्या UPHIN 2003/11917

उत्तर प्रदेश ब्रज तीर्थ विकास परिषद

upbtvp

सांस्कृतिक धरोहर की पुनर्प्रतिष्ठा

UP Braj Teerth Vikas Parishad has been constituted under the Uttar Pradesh Braj Niyojan Aur Vikas Board (sanshodhan) Adhiniyam 2017 (U.P. Act No. 3 of 2017) for the preparation of a plan for preserving, developing and maintaining the aesthetic quality of Braj heritage in all hues - cultural, ecological and architectural, co-coordinating and monitoring the implementation of such plan and for evolving harmonized policies for integrated tourism development and Heritage conservation and management in the region, giving advice and guidance to any department/local body/authority in the district of Mathura in respect of any plan, project or development proposals which affects or is likely to affect the heritage resource of the Braj Region and for matters connected here with or incidental there to.